Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 1, April-2018, ISSN 2230-7540

लोकगीत- अर्थ, परिभाषा, स्वरूप, उद्भव एवं विकास

Rajkumar[1]* Deepika Logani Trikha[2]

[1]Research Scholar, M.D. University, Rohtak, Haryana

[2]Research Director, M.D. University, Rohtak, Haryana

भूमिका :- किसी देश की संस्कृति का परिचय उस देश के लोक साहित्य से प्राप्त हो जाता है। लोक साहित्य समाज की आत्मा का उज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। किसी देश की जातीय, राष्ट्रीय साहित्यिक, सामाजिक ऐतिहासिक, धार्मिक एवं आर्थिक मापदंड के लिए यदि कोई पैमाना हमारे पास है तो वह उस देश का लोक साहित्य ही है।

---------------------------------x---------------------------------

लोक गीतों का अर्थ एवं परिभाषा:-

लोक गीत में लोक और गीत दो शब्दों का योग है जिसका अर्थ है लोक के गीत। लोक शब्द वास्तव में अंग्रेजी के 'फोक' का पर्याय है जो नगर तथा ग्राम की समस्त साधारण जन का द्योतक है, आचार्य हजारी प्रशाद द्विवेदी के अनुसार- 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है। बल्कि नगर व गामों में फैली हुई समुचि जनता है। जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार साधारण पोथ्यिां नहीं है ये लोग नगर में परिष्कृत रूचि समपन्न तथा संस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभयस्थ होते है।

लोक से उन लोगों का अभिज्ञान होता है जो नगर संस्कारों एवं सविध शिक्षा से वंचित है और विदग्ध अहं चैतन्य से रिक्त है। 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अंहकार से शून्य है। जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। इसी प्रकार 'गीत' शब्द का अर्थ प्रायः उस कृति से है जो गेय हो। लोकगीत में गेयता का होना आवश्यक है। संगीत एवं लय उसका प्राण है अतः इसी कारण लोकगीत को स्वतः स्फूर्त संगीत कहा गया है। लोकगीतों के सम्बंध में लोक साहित्य के मर्मज्ञों ने विभिन्न प्रकार के कलात्मक ढंगों से अपने विचार व्यक्त किए है।

लोक गीतों का स्वरूप:-

लोक साहित्य में लोक संस्कृति और सभ्यता का वास्तविक स्वरूप देखने को मिलता है लोक साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है जिसमें मानव जीवन के जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न संस्कार विभिन्न लोक साहित्यिक विधाओं के माध्यम से चित्रित होते है। साहित्यिक विधाए जैसे लोक गीत, लोककथाएं लोक गाथाए लोक नाट्य एवं लोक सुभाषित कहावते, मुहावरे इत्यादि।

लोक साहित्य की इन विधाओं में लोकगीत सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावशाली विधा है लोकगीत लोकरंजन एवं लोक मंगल के महत्त्वपूर्ण उपादान है।

मानवीय जीवन दुखों एवं प्रभावों की एक लम्बी गाथा है मानव जीवन में आए दिन कितने ही दुख, संकट एवं बाधाए आती रहती है जब हर्ष या विषाद की कोई भाव धारा हृदय को छू जाती है तो हृदय वीणा की तार की तरह झनझना उठते है। हृदयस्थ भाव अभिव्यक्ति हेतू व्यंग हो उठते है तथा लयात्मक रूप से निःसृत होकर लोक गीत का रूप धारण कर लेते है।

ये गीत सरल, स्वछन्द एवं मधुर इसलिए होते है कि इनका निर्माण लोक मानस द्वारा, लोक के लिए, शान्त और स्वछन्द वातावरण में हरे-भरे दूर तक फैले खेतों के मेठो, बहते झरनो, गदराई अमराईयों और विकसित होती हुई कलियों के बीच खुले आकाश के नीचे होता है।''

लोकगीत उदभव एवं विकास:-

लोक गीतों का उद्भव संभवतः उतना ही प्राचीन है जितना की मानव जीवन। आदि युग से जब मानव कन्द्राओं, गुफाओं, और जंगलों में रहता था तो वह प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए समुह में रहता था। जब उसमें बुद्धि का विकास हुआ होगा तो सम्भवतः उसने अपनी भावनाओं को लयात्मक ढंग से अभिव्यक्त

www.ignited.in

किया होगा। जिसे दूसरों ने गा-गा कर लोक गीत का रूप दे दिया होगा वही आदि गीत लोकगीत कहलाया। आदि मानव प्राकृतिक जीवन यापन करता था।

वह प्रकृति के संसर्ग में रहते हुए पूर्णत्या प्रकृति पर निर्भर था वह प्रकृति की गोद में पलने वाला जीव था। इसलिए उसका रहन-सहन आचार विचार सरल था आडम्बर एवं कृत्रिमता से दूर, नितान्त सहजता के कारण ही उसके गीतों में स्वछन्दता एवं स्वाभाविकता का पुट अधिक था। आज भी लोक गीतों में वही सार लय दृष्टिगोचर होता है।

लोक गीतों के उदभव एवं विकास के बारे में विद्वानों में मतभेद रहा है। लोक गीतों का सृजन कैसे हुआ इसके रचियता कौन है कई ऐसे विवादास्पद प्रश्न है जिनका स्पष्टीकरण अत्यन्त आवश्यक है।

जर्मनी के प्रख्यात लोक साहित्य मर्मज्ञ विल्यप्रिय ने अपना सामूहिक उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था की लोकगीत सामुहिक रीति से निर्मित होते है। परन्तु रूसी लोक साहित्य मर्मज्ञ सोकोलोव, प्रिय के सामूहिक उत्पत्ति के सिद्धान्त का खण्डन करते हुए लिखते है। कि कोई भी कृति ऐसी नहीं है जिसका कोई रचियता ना हो या जो सबकी रचना हो ।

वस्तुतः लोक गीत का सृजन बीज रूप में सर्वप्रथ एक व्यक्ति द्वारा होता है। और फिर मौखिक परम्परा में रहने के कारण अन्य व्यक्तियों द्वारा समय-समय पर संबोधित होता रहता है। यही कारण है कि एक ही गीत के कई पढान्तर प्रायः उपलब्ध होते है। डॉ- भीमसिंह मालिक के अनुसार "दुर्वादुल की भांति लोक गीतों के मूलों तक पहुंचना दुःसाध्य कार्य है और जिस प्रकार पूर्वा स्थान-स्थान पर मिट्टी से सम्पर्क स्थापित कर, अपनी श्रृंखला के नए-नए फूलों का जाल बिछाती चलती है वैसे ही लोक गीत भी ना-ना कण्ठों और स्वरों में रमकर विकसित एवं परिष्कृत होता रहता है।

मानवीय ज्ञान के अनन्त भण्डार, इतिहास के अनेक पृष्ठों की उलट फेर, के पश्चात भी लोक गीतों के सृजन की तिथि को खोजना संम्भव नहीं है क्योंकि लोक गीतों को किसी काल विशेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता मानव हृदय जब कभी भी साहानुभूति से प्रेरित सुरा संवेदनाओं से आन्दोलित हुआ होगा गीतों के अज्ञात स्वर मनुष्य के आधारों पर गुंज उठे होंगे। आनंन्द की भावना से मानव जीवन सर्वदा ही पोषित होता रहा है। अतः आनन्द भावना को मानव जीवन के विकास की प्रमुख प्रवृति ही माना जाएगा इसकी मूल प्रेरणा है मानव हृदय की रसात्मक अनुभूति। इस अनुभूति का उदवेलन हृदय की संकुचित सीमा में न समाकर जब वाणी मुर्खारत होने की स्थिति में पहुंच जाता है तभी लोक गीतो का स्त्रेत उमड पडता है।

लोक गीतों के उदगम से सम्बन्धि जिज्ञासा का देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा प्रस्तुत समाधान भावात्मक होते हुए भी यथातथ्य विश्लेषन के अधिक निकट है। कहां से आते है इतने गीत स्मरण विस्मरण की आंख मिचौनी से। कुछ अट्ठास से और कुछ उदास हृदय से। जीवन के खेत में ये उगते है। कल्पना भी अपना काम करती है रागवृति भी, भावना भी और नृत्य का हिलोरा भी इसी प्रकार हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक हजारी प्रसाद द्विवेदि ने कहा है। कि लोक गीत की एक-एक बहू के चित्रण पर रीति काल की सौ-सौ मुगधाए खण्डिताए और थिराएं न्यौछावर की जा सकती है। क्योंकि ये निरलेकार होने पर भी प्राणमयी है। और वे अलंकार से लदी हुई होकर भी निष्प्राण है। ये अपने जीवन के लिए कि रस्म विशेष की मुखापेक्षि नहीं है और अपने आप में परिपूर्ण है।

लोक गीतों के आलोचक डॉ- चिन्तामणि उपाध्याय लोकगीतों का उद्गम बताते हुए कहते है कि 'सुख दुख मयी भावावेश की अवस्था के चित्रण का माध्यम आशुपात दीर्घ निश्वास, पुलक और मुस्कान आदि आनुभाविक आंगिक चेष्टाओं तक ही सीमित न रहकर हर्ष और वेदना का स्वरूप धारण कर कण्ठ के द्वारा साकार हो उठता है तभी गीतों के स्वर फूट पड़ते है। ये गीत किसी कवि के नहीं व्यक्ति विशेष के नहीं अपितु सामान्य जनमानस की अज्ञात सृष्टि है।

लोक गीत का रचयिता प्रायः अज्ञात होता है परन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि गीत का कोई निर्माता ही नहीं था इसकी उत्पत्ति "देव-योग" से हुई हो। लोक गीत अज्ञात रस कारण है कि लेखकों ने अधिकांशतः नाम लिपिबद्ध नहीं किए और यदि कई स्थितियों में किए भी है तो हम उन्हें खोजने में असमर्थ है। वे पाण्डित्य से अहंकार से शून्य साधारण, अनपढ व्यक्ति थे उनके पास आधुनिक युग जैसे प्रकाशन एवं टंकाग की सुविधा न थी। अपनी रचनाओं का निर्माण उन्होंने कागज व-स्पाही से ना करके मौखिकता से किया है।

"आधुनिक युग में तो साहित्य के इतिहास लेखक की कलम भी कई स्थलों पर रूक जाती है जब उसे "पृथवी राज रासो" जैसे मौलिक, कलात्मक ग्रन्थों की प्रामाणिकता तथा रचनाकाल का ऐतिहासिक विवरण निश्चित करना पडता है। लोकगीत न तो कभी लिपिबद्ध हुए थे। न इनके रचियताओं की ज्ञेयता ही स्पष्ट है। अतः मौखिक परम्परा से एविरता ऐसी कलात्मक रचनाओं का रचना काल ढूंढना अथवा इनके मूल रचियताओं की खोज करना कठिन

www.ignited.in

ही नहीं असंम्भव भी है। वस्तुतः जब तक वेदों के रचियताओं की ज्ञेयता स्पष्ट नहीं होती, तब तक लोकगीतों के रचियताओं को ढूंढना निरर्थक है।"

लोकगीत मौलिक परम्परा में जिवित रहते है। लोग कवि सामान्य एवं साधारण जनसमूह का प्रतिनिधि होता है। गीत का सृजन करते समय वह लेखनी से अधिक अपने कण्ठ तथा जिहवा का उपयुक्त प्रयोग करता है फलस्वरूप मौखिक प्रक्रिया से ही गीत लोकप्रिय हो जाता है। ज्यो ही गीत एक या दो पिढीयों तक चला आता है। इसके मूल रचियता का नाम मिटता चला आता है तथा भुला दिया जाता है। वस्तुतः कलान्तर में गीतकार नितोत अज्ञात हो जाता है।

जहां किसी लोक गीत में गायक या लेखक का नाम मिलता भी है वही ही प्रमाणिक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वस्तुतः गीत का मूल रचियता वही है। वस्तुतः किसी भी गायक को लोकगीत का मूल रचियता मान कर, गीत का रचनाकाल इत्यादि निर्धारित करना सर्वथा ग्रामक होगा।

वस्तुतः यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि किसी गीत का रचना काल क्या है? इसका सृजन कब और कैसे हुआ? वास्तव में ये ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। जिनका उत्तर देना सहज नहीं। जब तक रचनात्मक लिखित साहित्य की भांति लोकगीतों अथवा लोक साहित्य का इतिहास नहीं लिया जाता, तब तक ऐसे प्रश्नों का समाधान असम्भव है।

वस्तुतः भारत की समग्र बोलियों तथा उपबोलियों में प्रचलित गीतों के अध्ययन परान्त कोई ऐसा लक्ष्य प्राप्त नहीं होता जिसके आधार पर दृढतापूर्वक कहा जाए की यहां के लोक गीतों का सृजन "सामुहिक विधि" से हुआ है। आधुनिक अनुसंधाान ने यह बात स्पष्ट करती है की 'लोकगीतों' की सृजन प्रक्रिया में समुदाय नहीं अपितु समुदाय का व्यक्ति ही अधिक सक्रिय रहा है।

यह प्रक्रिया आज भी जीवित है। आज भी गीत बनते है जिन्हें समुदाय का व्यक्ति बनाता है। विशेष कर स्त्रियां इस क्षेत्र में आग्रणीय है। अस्तु लोकगीतों की उत्पत्ति नहीं सामुहिक रीति और नहीं किसी विशिष्ट जाति द्वारा होती है। लोक गीत लोकमाणस की साधारण अभिव्यक्ति है। जिसका रचियता एक व्यकित हुआ करता है अतः जिसे लोक कवि की संज्ञा दी जा सकती है। मौखिक परम्परा में रहने से ये गीत विकृत होते है। जिनका दायित्व "लोक गायक" पर ही ठहरता है।

निष्कर्ष:-

लोक गीतों का कई दृष्टियों से बड़ा महत्त्व है। हमारी इन अमूल्य निधियों को शिक्षा और सभ्यता नाश करने के लिए तुली है जब चक्की ही नहीं रहेगी और उसका स्थान आधुनिक आटा पीसने की मशीन तो फिर चक्की के गीतों को स्त्री के स्थान पर क्या मिस्त्री गाएगा? इधर पाठशालाएं विभिन्न जातियों के गीतों को आत्मसंत कर रही है और कन्याएं पाठशाला नीरस, लक्ष्य हीन प्रभाव रहित, निर्जिव और हृदय को न सपर्स करने वाली तुक बंन्दियों के बदले कन्याओं से उनके मधुर उपदेश प्रद और लय-युक्त गीतों को लेकर उन्हें विस्मृति के हवाले कर रही है अब ऐसी स्थिति में हम गाफिल रहे तो हमारा सर्वनाश है इसलिए लोक गीतों की इस सक्रमण कालीन अवस्था में हमें इनकी रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील हो जाना चाहिए।

संदर्भ व ग्रंथ सूची:-

वर्मा,रामसहाय संपादक हरियाणा संवाद पृ॰ 23

द्विवेदी, हजारी प्रसाद, जनपद,वर्ष 1 , पृ॰ 65

भट्ट,डॉ चंद्रशेखर, हड़ोती लोकगीत प्रकाशन

शर्मा, डॉ श्रीराम, लोक साहित्य सिद्धान्त ओर प्रयोग पृ॰ 39

अनील, संतराम, कनौजी लोकगीत पृ॰ 42

मालिक,डॉ भीम सिंह , हरियाणा के लोकगीत सांस्कृतिक मूल्यांकन पृ॰ 7-8

शर्मा, डॉ पूरणचन्द, लोक संस्कृति के क्षितिज पृ॰ 16

Corresponding Author

Rajkumar*

Research Scholar, M.D. University, Rohtak, Haryana